

वाम की विदाई



■ **कुमार नरेन्द्र सिंह**

वरिष्ठ लेखक/पत्रकार

बार का लोक सभा चुनाव अन्य चुनावों से अनेक मामले में अलहदा रहा। हमने पहली बार संसदीय लोकतंत्र का चुनाव अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनाव की तर्ज पर होते देखा। भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) ने मोदी को प्रधानमंत्री के रूप में जनता के सामने पेश किया और चुनाव को उन्हीं के इर्द-गिर्द बनाए रखने का सफल प्रयास किया, जबकि विपक्षी दल जाने-अनजाने उसी के बनाए पिच पर खेलने को बाध्य रहे। चुनाव में प्रचंड बहुमत हासिल कर भाजपा ने अपनी रणनीति की सार्थकता भी सिद्ध कर दी। मोदी की सुनामी में सभी विपक्षी दल सूखे पत्ते की तरह उड़ गए। गठबंधन और महागठबंधन का किला रेत का घर साबित हुआ। लेकिन सबसे खराब स्थिति वाम दलों की रही। पूरे देश से केवल केरल से एक वाम उम्मीदवार विजयी हुआ। पिछले 70 सालों में वाम दलों की यह सबसे बड़ी पराजय है। एक तरह से उसका कोई नामलेवा ही नहीं रह गया। आखिर ऐसा क्या हुआ कि वाम चुनावी पटल से ही गायब हो गया?

यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है कि जो वाम स्तर के दशक तक संसद में मुख्य विपक्षी दल हुआ करता था, वह 2019 तक आते-आते संसदीय लोकतंत्र में बिल्कुल ही अप्रासंगिक बनकर रह गया। पश्चिम बंगाल में तीन दशकों तक सत्ता में रही कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (सीपीएम)

इस बार के चुनाव में अपना खाता भी नहीं खोल सकी, जबकि केरल में उसे महज एक सीट मिली। मालूम हो कि पारंपरिक रूप से केरल भी उसका एक मजबूत गढ़ रहा है। संसदीय लोकतंत्र में उसकी हिस्सेदारी नगण्य हो चुकी है। ऐसा नहीं है कि वाम दलों के पास कैडर नहीं है। ठीक है कि उसके कैडरों में कमी आयी है, लेकिन भाजपा के बाद आज भी देश में वाम दलों के पास ही अपने प्रतिबद्ध कार्यकर्ता हैं। ऐसे में सभी के मन में यह बात उठ रही है कि उनका प्रदर्शन इतना निराशाजनक क्यों रहा और इसका संकेत क्या है?

दूरदृष्टि-दोष

इस बार के लोक सभा चुनावों में पश्चिम बंगाल और केरल दोनों ही जगहों पर देखा गया कि वाम दलों के समर्थकों ने अपने दलों को छोड़कर अन्य दलों का समर्थन किया। पश्चिम बंगाल में सीपीएम के कार्यकर्ताओं ने दूरदृष्टि-दोष के चलते भाजपा को समर्थन दिया। दरअसल, उनके मन में ममता वनर्जी और उनकी पार्टी तृणमूल कांग्रेस के खिलाफ इतना गुस्सा था कि उन्होंने भाजपा को समर्थन देना ही उचित समझा। वैसे इसमें कोई अस्वाभाविक बात नहीं है, क्योंकि वहां उसकी राजनीतिक लड़ाई ममता से ही रही है। जब उन्हें महसूस हुआ कि वे तृणमूल कांग्रेस से मुकाबला नहीं कर सकते, तो उन्होंने भाजपा को समर्थन दे दिया। चूंकि वहां ममता सीपीएम को सत्ता से हटाने में कामयाब हुई थीं और तृणमूल कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के साथ सीपीएम के कार्यकर्ताओं की हिंसक झड़पें होती रही थीं, इसलिए उन्हें तृणमूल को पराजित करने के उद्देश्य से भाजपा को समर्थन देना ही उचित प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि सीपीएम को वोट देकर वे अपना वोट बर्बाद करेंगे। यही हाल केरल में हुआ। केरल के कई सीपीएम नेताओं ने भी स्वीकार किया है कि उनके कैडरों ने लेफ्ट डेमोक्रेटिक फ्रंट (एलडीएफ) को छोड़कर कांग्रेस की अगुआई वाली यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट (यूडीएफ) को वोट दिया।

वाम दलों के कैडरों की यह मन:स्थिति कोई अचानक नहीं बनी है, बल्कि इसके लिए विगत में लिए गए वाम दलों के अनेक निर्णय भी जिम्मेदार नजर आते हैं। जहां तक

चिंता का विषय है या विरोधियों के प्रचार का हिस्सा है? विरोधी तो छवि बिगाड़ना ही चाहेंगे, पर क्या पार्टी-कार्यकर्ता की राय भी यही है? बंगाल में पार्टी का स्थानीय कार्यकर्ता ममता बनर्जी के दमन से परेशान है, पर केन्द्रीय नेतृत्व ने ममता को विरोय से मुक्त रखा। इस चुनाव के दौरान एकबार राहुल गांधी ने नरेन्द्र मोदी के साथ ममता बनर्जी की भी आलोचना की तो उन्हें प्रगतिशील खेमे की बातें सुननी पड़ीं। सच यह है कि प्रगतिशील खेमा खुद हराकरी कर रहा है।

काउंटर नैरेटिव कहा है?

भारतीय जनता पार्टी अपने नजरिए को जनता के सामने न केवल रखने में, बल्कि उसका अनुमोदन पाने में सफल हुई है। दूसरी तरफ, कांग्रेस पार्टी इसका काउंटर-नैरेटिव तैयार करने में बुरी तरह विफल हुई है। अमेठी में राहुल गांधी की हार कांग्रेस के लिए अशुभ संकेत है। भले ही वे वायनाड से जीत गए, पर अमेठी उनका पारिवारिक गढ़ रहा है। इस हार का संदेश उत्तर



सुनाई पड़ेगे। इस बार चुनाव परिणाम आने के पहले ही कर्नाटक कांग्रेस में बगावत शुरू हो गई। कर्नाटक कांग्रेस के नेता रोशन बेग ने पार्टी महासचिव वेणुगोपाल राव को जोकर करार दिया, तो कांग्रेस प्रदेश अध्यक्ष को फर्माप बताया। वे इतने पर ही नहीं रुके और कहा, ‘बीजेपी को 18 से ज्यादा सीटें मिलेंगी। यह सिर्फ सिद्धारमैया की चमक से हुआ है। यह कांग्रेस के चेहरे पर तमाचा है।’ संभव है कि मध्य प्रदेश और राजस्थान से भी अस्तोष की खबरें सुनाई पड़ें।

तमिलनाडु और केरल के बाद कांग्रेस ने सबसे अच्छे परिणाम पंजाब में दिए हैं। इसके पीछे कैप्टन अमरिंदर सिंह का कड़क नेतृत्व भी है, पर उन्हें नवजोत सिंह सिद्धू लगातार चुनौती देते रहते हैं। बीजेपी से कांग्रेस में आए सिद्धू की इतनी हिम्मत कैसे होती है? इसके पीछे कारण यह है कि वे हाईकमान से रिश्ता बनाकर रखते हैं। एक बार वे कह भी चुके हैं-‘कौन कैप्टन अमरिंदर? मेरे कैप्टन राहुल गांधी हैं।’

विचारधारा की लड़ाई

पहली बार देश में कोई गैर-कांग्रेसी सरकार लगातार दूसरी बार पांच साल के लिए चुनकर आई है। चुनकर आई ही नहीं है, कांग्रेस को बेहद कमजोर बनाकर आई है। कुछ काम पांच साल पहले होने चाहिए थे, जो या तो हुए नहीं, या अधूरे रहे। जून, 2014 में पार्टी के वरिष्ठ नेता एफे पेंटनी ने केरल में पार्टी कार्यकर्ताओं से कहा था कि हमें ‘छद्म धर्म निरपेक्षता’ और अल्पसंख्यकों के प्रति झुकाने रखने वाली छवि को सुधारना होगा। उनके बयान से लहरें उठी थीं, पर जल्द थम गईं। मीडिया रिपोर्टों में कहा गया था कि पार्टी की आंतरिक बैठकों में यह मसला कई बार उठता रहा है, इसलिए पार्टी निचले स्तर के कार्यकर्ता की राय लेना चाहती है।

गुजरात विधानसभा चुनाव के पहले राहुल गांधी ने कुछ मंदिरों में जाना शुरू किया। इससे उनकी छवि में बदलाव हुआ। वे कैलाश मानसरोवर की यात्रा पर गए। उनके इन प्रयासों पर देश के कुछ प्रगतिशीलों ने इसे सॉफ्ट हिन्दुत्व बताया। हिन्दुत्व और हिन्दू के बीच का फरद हाल के वर्षों में अब फिट गया है। ‘राजनीतिक हिन्दुत्व’ पर हमला करने वाले अब हिन्दू प्रतीकों, परम्पराओं, संस्कारों और भवनाओं पर खुलकर प्रहार कर रहे हैं। इनकी चोट सामान्य व्यक्ति के मन में लगती है। वह चोट चुनाव परिणाम के रूप में सामने आ रही है।

फिर क्या जब कृपि सुखाना। ‘हार होने के बाद कार्यकर्ता की याद आना भी कुछ कहता है। हिन्दू विरोधी’ छवि पार्टी की

राजनीतिक भंवर में कांग्रेस



■ **प्रमोद जोशी**

वरिष्ठ पत्रकार

चुनाव

परिणाम आने के बाद इतिहास लेखक राम गुहा ने ट्वीट किया कि हैरत की बात है कि राहुल गांधी ने पार्टी अध्यक्ष पद से इस्तीफा नहीं दिया है। पार्टी को अब नया नेता चुनना चाहिए। परिणाम आने के पहले योगेन्द्र यादव ने कहीं कहा कि कांग्रेस को मर जाना चाहिए। इस चुनाव में यदि कांग्रेस ‘आइडिया ऑफ इंडिया’ को बचाने के लिए बीजेपी को रोकने में असफल रहती है, तो मान लेना चाहिए कि इस पार्टी का इतिहास में कोई सकारात्मक रोल नहीं रहा है। आज कांग्रेस वैकल्पिक राजनीति को बनाने में एक मात्र सबसे बड़ी बाधा है।

इस किस्म के ट्वीटों और बयानों का क्रम शुरू हो गया है। पर ये बातें व्यावहारिक राजनीति से बाहर बैठे लोगों की हैं। वे कांग्रेस के यथार्थ से परिचित नहीं हैं। बहरहाल, यह विचार करने की बात जरूर है कि पांच साल की मेहनत और बहु-प्रतीक्षित नेतृत्व परिवर्तन के बाद भी पार्टी देश भर में केवल 52 सीटें हासिल कर पाई। इस विफलता या इसके विपरीत बीजेपी की सफलता पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है।

मेहनत बेकार

कांग्रेस को इस बार सन 2014 के लोक सभा परिणामों की तुलना में केवल आठ सीटें ज्यादा मिली हैं। ये आठ सीटें केरल और तमिलनाडु में हासिल 15 अतिरिक्त सीटों के बावजूद हैं।

यह अनिश्चयसनीय परिणाम है। तमाम विश्लेषकों के अनुमान गलत साबित क्यों हुए? इसके साथ ही यह भी विचार करना होगा कि उत्तर प्रदेश में सोशल इंजीनियरी कहां फेल हुई। गणित के हिसाब से यदि कांग्रेस भी महागठबंधन का हिस्सा होती, तब भी बीजेपी को सफलता मिलती। जातीय गणित और भवनाओं की रासायनिक प्रक्रियाओं के बीच कहीं पेच जरूर है। यह बात कांग्रेस को भी समझने की जरूरत है।

पार्टी और परिवार

सन 2014 के लोक सभा चुनाव के बाद कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में सोनिया गांधी और राहुल गांधी ने इस्तीफों की पेशकश की थी, जो नामजूर कर दी गई थी। इस बार भी ऐसा होगा, पर यकीनन पार्टी और परिवार का रिश्ता नहीं टूटेगा। पार्टी जुड़ी ही इस आधार पर है। गांधी परिवार के वरrier कांग्रेस का कोई मतलब नहीं है। उसे जोड़े रखने का एकमात्र फैवीकॉल अब यह परिवार है। संयोग से कांग्रेस की खराबी भी यही मानी जाती है।

पिछले चुनाव के बाद कांग्रेस के नेताओं ने एक स्वर से कहा कि पार्टी बाउंसबैक करेगी। 16 मई, 2014 को हार की जिम्मेदारी लेते हुए राहुल और सोनिया ने कहा था कि हम अपनी नीतियों और मूल्यों पर चलते रहेंगे। इस बार भी परिणाम आने के बाद राहुल गांधी ने नरेन्द्र मोदी को उनकी जीत पर बधाई दी और कहा कि हमारी विचारधारा की लड़ाई है, जो जारी रहेगी। उन्होंने अमेठी में जीते के लिए स्मृति ईरानी को भी बधाई दी थी। साथ ही कहा कि कार्यकर्ताओं को घबराने की जरूरत नहीं है, हम लड़ेंगे। साथ ही यह भी कहा कि भविष्य के कार्यक्रम पर कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में विचार होगा।

फिलहाल कांग्रेस के चुनाव परिणामों के विश्लेषण और उनकी दिशा पर विचार करने का समय है। राहुल गांधी कहते हैं कि हमारी विचारधारा की लड़ाई है, पर उन्हें देखना होगा कि उनकी रणनीति में कितना जोर विचारधारा पर था और कितना हवाई बातों पर। साथ ही उन्हें अपनी संगठनात्मक शक्ति को भी

सामाजिक आधार में फैलाव की जीत



■ **सत्येन्द्र प्रसाद सिंह**

युवा पत्रकार

आम

तौर पर राजनीति में जाति को नकारात्मक भाव से देखा जाता है। जाति और लोकतांत्रिक राजनीति की अंत:क्रिया को प्राय: ‘राजनीति में जातिवाद’ की संज्ञा दी जाती है, लेकिन रजनी कोठारी जैसे राजनीति विज्ञानी इसे ‘जातियों का राजनीतिकरण’ मानते हैं। यह वह प्रक्रिया है, जो समाज के कमजोर समुदायों को जाति नामक संस्था के इर्द-गिर्द आसानी से गोलबंद होने का अवसर प्रदान करती है। जाति आधारित यह राजनीति उन्हें अपने हित में सौदेबाजी करने की ताकत प्रदान करती है। यहां इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि जाति और राजनीति के इस मेल से भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में बिना किसी खून-खराबे के मौन भाव से बड़े-बड़े सामाजिक परिवर्तन हुए और यह प्रक्रिया आज भी जारी है।

अति पिछड़ी जातियों में उभार है बड़ा संदेश

मौजूदा चुनाव का सबसे बड़ा संदेश अच्छी-खासी आबादी वाली अति पिछड़ी जातियों का राजनीतिक उभार है, जिसे इस चुनावी राजनीति ने धार प्रदान की है और इसे आधार दिया है भाजपा ने। इसे किसी कोरे राजनीतिक आदर्श का नतीजा नहीं कह सकते, बल्कि यह चुनावी राजनीति की आवश्यकताओं से प्रेरित है। फिर भी भाजपा को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि वह इसका वाहक बनी, अन्यथा ऐसा करने के लिए मौका दूसरी पार्टियों के पास भी मौजूद था। ऐसा भी नहीं कह सकते कि सामाजिक न्याय के नाम पर राजनीति करने वाली सपा, बसपा, राजद जैसे पार्टियों ने ऐसी इच्छा नहीं दिखाई, लेकिन इनके बार में ऐसी धारणा बनी कि ये कुछ जातियों या परिवारों के सशक्तिकरण तक सीमित हैं। अति पिछड़ी जातियों को ऐसा लगने लगा कि इन्हें सत्ता में समुचित भागीदारी नहीं मिली।

वाले कुछ नेता भी इस बदलाव के लिए सहज भाव से तैयार नहीं थे। परिस्थिति की नजाकत को भांपते हुए तब संच ने 1996 में ‘समरस्य संगम’ कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदुओं की विभिन्न जातियों में व्याप्त अंतर्विरोध को दूर करने और उनमें सामाजिक सद्भाव एवं मेलजोल कायम करने के लिए अभियान चलाया।

दूसरी ओर, सामाजिक धरातल पर अगड़े, पिछड़े और दलित एक-दूसरे को सहज भाव से स्वीकार करने के लिए आगे आने लगे। अल्पसंख्यक

नौवें दशक से ही भाजपा में परिवर्तन की

तयार वह रही थी, लेकिन 2014 के लोक सभा चुनाव में यह मजबूती से दिखी। इस चुनाव में अति पिछड़ी जाति के नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा को 30 प्रतिशत से अधिक मत मिले, जो 1991 के वाद पहली वार किसी पार्टी को मिला था। एक अध्ययन के मुताविक कांग्रेस की तुलना में भाजपा को समाज के सभी वर्गों में ज्यादा वोट मिला, चाहे वह मध्य या उच्च वर्ग में हो। खास बात यह है कि 2009 की तुलना में भाजपा को मिले मतों में यह वृद्धि ज्यादा थी। अगर इसके जातीय आधार का विश्लेषण करें, तो पिछड़ी जातियों के इन चारों वर्गों में भाजपा को कांग्रेस से ज्यादा वोट मिले। हालांकि इन चारों वर्गों में दलित समुदाय में भाजपा को कांग्रेस से ज्यादा वोट मिले, लेकिन इसका अंतर पिछड़े समुदाय के मिले वोट से कम था। अलबत्ता, आदिवासी समाज में कांग्रेस और भाजपा दोनों के प्रति अच्छा समर्थन दिखा, लेकिन यहां भी भाजपा उससे आगे रही, खासकर मध्य एवं उच्च मध्य वर्ग में।

निश्चित रूप से मुस्लिम समाज में भाजपा को काफी कम वोट मिले, लेकिन हिंदुओं की अगड़ी जातियों में उत्साहजनक प्रतिक्रिया रही। हालांकि इस संदर्भ में मौजूदा चुनाव के बारे में अभी व्यवस्थित अध्ययन आना बाकी है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इस चुनाव में पिछले चुनाव की सामाजिक प्रवृत्ति की और मजबूत मिली है। कहा जा सकता है कि भारत में वर्ग और जाति के मेल पर आधारित ढीले-ढाले किस्म का एक नया सामाजिक समूह जन्म ले रहा है। इसमें पहचान की राजनीति के अलावा मोदी सरकार की लोक कल्याणकारी योजनाओं की अहम भूमिका है। फिर भी आज पश्चिमी समाज के संदर्भ में कुछ लोगों के लिए यह पहली बना हुआ है कि उदारोकरण के इस दौर में आखिर यह सब कैसे संभव हो गया?

प्रतिबद्धता की बात है, तो वह शून्य में कायम नहीं रह सकता। उसे बनाए रखने के लिए ठोस जमीन भी तैयार करनी होती है। कैडरों की हताशा पार्टी की लगातार चुनावी असफलता का परिणाम तो है ही, पार्टी का सत्ता से बाहर रहना भी उसका एक कारक नजर आता है। सत्ता से विहीन होकर वाम दल अपने कैडरों को एकजुट रखने में नाकामयाब रहे, क्योंकि सत्ता से बाहर रहने के कारण वाम समर्थकों की तरह-तरह की सरकारी सहायता बंद हो गयी। पुलिस और प्रशासन से मिलने वाली सारी रियायतें और सुविधाएं समाप्त हो गयीं। अब वे अपने चहेतों को कोई लाभ पहुंचाने की स्थिति में नहीं रह गए। इसके चलते जहां समाज में उनकी पूंज कम हुई, वहीं सरकार के साथ उनका आंकड़ुा छत्तीस को हो गया। अब वे अपनों की सहायता तो छोड़िए, खुद की सहायता करने के काबिल भी नहीं रह गए। यहां एक बात हमें ध्यान में रखनी चाहिए कि आज जो तृणमूल का कैडर है, उसका अधिकांश पहले सीपीएम के साथ ही हुआ करता था।

प्रशिक्षण पर विराम

इससे एक बात और साबित होती है और वह यह कि सीपीएम नेतृत्व अपने कैडरों को मार्क्सवादी प्रशिक्षण देने और उनके मन में पार्टी के लिए प्रतिबद्धता का भाव और उत्साह कायम रखने में कोताही करता रहा। वाम नेताओं ने पार्टी कैडरों को दिये जानेवाले प्रशिक्षण पर विराम लगा दिया और केवल नारा लगाने को ही प्रतिबद्धता का पर्याय मान लिया गया। अगर ऐसा नहीं हुआ, तो पार्टी और वाम के प्रति उनकी प्रतिबद्धता इतनी जल्दी खंडित कैसे हो गयी? इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वाम दलों ने अपने जुड़ाऊ चरित्र का परिचय कर दिया। जनहित के मुद्दे को लेकर वे सड़क पर उतरने से परहेज करने लगे। यह जानने के लिए किसी शोध की आवश्यकता नहीं कि पिछले कई दशकों से वाम दलों ने किसी भी जनहित के मुद्दे पर कोई भी जनांदोलन नहीं किया। संसद से लेकर सड़क तक वे खामोश रहे। ऐसे में उनके कैडरों का उत्साह शिथिल होना स्वाभाविक था। जाहिर है कि हतोत्साह होकर कोई पूर्ण प्रयास नहीं कर सकता। संघर्ष ही वाम की शक्ति रही थी, लेकिन दुर्भाग्य से वाम दलों ने उसका परिचयग कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि संघर्ष से ही प्रतिबद्धता पैदा होती है। जब संघर्ष ही नहीं रहा, तो प्रतिबद्धता कहां से रह सकती थी।

सीपीएम के सामने वाम को मजबूत करने का एक ऐतिहासिक अवसर भी उपस्थित हुआ था, जब ज्योति बसु को प्रधानमंत्री बनाए जाने का प्रस्ताव आया था, लेकिन उसने अपनी दूरदर्शिता के अभाव में उसे गंवा दिया। इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहा जाए कि जब देश के अन्य दल ज्योति बसु को देश का प्रधानमंत्री बनाने के लिए उतावले थे, तो खुद सीपीएम ने

ही अड़ंगा लगा दिया। मालूम हो कि स्वयं ज्योति बसु ने सीपीएम के इस निर्णय को ऐतिहासिक गलती करार दिया था। आज साबित भी हो रहा है कि सचमुच वह सीपीएम की ऐतिहासिक गलती थी। यदि उस समय ज्योति बाबू देश के प्रधानमंत्री बन जाते, तो निस्संदेह वाम को गति और प्रतिष्ठा मिलती। उसकी पेट बढ़ती और वह जनहित में अपनी नीतियां लागू कर सकता था। वह एक ऐसा अवसर मिला था, जब वाम बैसाखी का सहारा छोड़कर अपने कदमों पर खड़ा हो सकता था। लेकिन उसका दुर्भाग्य कहिए कि पार्टी ने ज्योति बसु को प्रधानमंत्री बनने ही नहीं दिया।

वैसे यह केवल वाम के लिए ही बुरा नहीं हुआ, बल्कि देश के तमाम वंचितों-मजदूर, किसान, आदिवासियों, दलित और अल्पसंख्यक के लिए भी बुरा हुआ। यूपीए ग्रथम के समय हमने देखा था कि वाम दलों ने किस तरह मनमोहन सिंह सरकार को जनविरोधी नीतियों को लागू करने से रोकती रही थी। संक्षेप में, वाम दलों की विदाई स्वयं उनके लिए तो परेशानी का सबब है ही, देश के आम आदमी के लिए भी बुरा सुकून है।

वैसे यह केवल वाम के लिए ही बुरा नहीं हुआ, बल्कि देश के तमाम वंचितों-मजदूर, किसान, आदिवासियों, दलित और अल्पसंख्यक के लिए भी बुरा हुआ। यूपीए ग्रथम के समय हमने देखा था कि वाम दलों ने किस तरह मनमोहन सिंह सरकार को जनविरोधी नीतियों को लागू करने से रोकती रही थी। संक्षेप में, वाम दलों की विदाई स्वयं उनके लिए तो परेशानी का सबब है ही, देश के आम आदमी के लिए भी बुरा सुकून है।

हिंदुओं में पिछले करीब तीस वर्षों में जातिगत दूरी घट रही है। सामाजिक समायोजन की भाजपा की इस रणनीति को बोलचाल की भाषा में प्राय: ‘सोशल इंजीनियरिंग’ कहा जाता है।

समाज के सभी वर्गों में स्वीकार्यता बही

जाहिर है यह सब आकर्षिक नहीं था। नब्बे के दशक से ही भाजपा में परिवर्तन की बयार बह रही थी, लेकिन 2014 के लोक सभा चुनाव में यह मजबूती से दिखी। इस चुनाव में अति पिछड़ी जाति के नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा को 30 प्रतिशत से अधिक मत मिले, जो 1991 के बाद पहली बार किसी पार्टी को मिला था। एक अध्ययन के मुताबिक कांग्रेस की तुलना में भाजपा को समाज के सभी वर्गों में ज्यादा वोट मिला, चाहे वह मध्य या उच्च मध्य वर्ग हो या निम्न या गरीब हो। खास बात यह है कि 2009 की तुलना में भाजपा को मिले मतों में यह वृद्धि ज्यादा थी। अगर इसके जातीय आधार का विश्लेषण करें, तो पिछड़ी जातियों के इन चारों वर्गों में भाजपा को कांग्रेस से ज्यादा वोट मिले। हालांकि इन चारों वर्गों में दलित समुदाय में भाजपा को कांग्रेस से ज्यादा वोट मिले, लेकिन इसका अंतर पिछड़े समुदाय के मिले वोट से कम था। अलबत्ता, आदिवासी समाज में कांग्रेस और भाजपा दोनों के प्रति अच्छा समर्थन दिखा, लेकिन यहां भी भाजपा उससे आगे रही, खासकर मध्य एवं उच्च मध्य वर्ग में।

निश्चित रूप से मुस्लिम समाज में भाजपा को काफी कम वोट मिले, लेकिन हिंदुओं की अगड़ी जातियों में उत्साहजनक प्रतिक्रिया रही। हालांकि इस संदर्भ में मौजूदा चुनाव के बारे में अभी व्यवस्थित अध्ययन आना बाकी है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इस चुनाव में पिछले चुनाव की सामाजिक प्रवृत्ति की और मजबूत मिली है। कहा जा सकता है कि भारत में वर्ग और जाति के मेल पर आधारित ढीले-ढाले किस्म का एक नया सामाजिक समूह जन्म ले रहा है। इसमें पहचान की राजनीति के अलावा मोदी सरकार की लोक कल्याणकारी योजनाओं की अहम भूमिका है। फिर भी आज पश्चिमी समाज के संदर्भ में कुछ लोगों के लिए यह पहली बना हुआ है कि उदारोकरण के इस दौर में आखिर यह सब कैसे संभव हो गया?